''श्रम कल्याण–विकास के विभिन्न स्वरूप''

*पुष्पा तातेड़ (जैन)

श्रम कल्याण के अभिगमों के विश्लेषण से स्पष्ट हैं कि मानवीय सभ्यता के विकास की विभिन्न मंजिलों पर श्रम कल्याण के अर्थ और अभिगम (approach) में व्यापक बदलाव आया हैं, और श्रम कल्याण का दर्शन मानवीय सभ्यता के विकास की विभिन्न मंजिलों में बदलता गया हैं। मानव सभ्यता के विकास की वर्तमान मंजिल तक पहुँचने से पूर्व हमारे समाज को कम से कम तीन मंजिलों से गुजरना पडा, जिन्हें क्रमशः पराभव (subjugation), उदारवादी (liberalization) और संगठन (organization) काल कहा जाता हैं। यद्यपि इन तीनों मंजिलों के बीच कोई स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं खींची जा सकती है, तथापि प्रत्येक काल या मंजिल की अपनी कुछ ऐसी विशेषताएँ है, जिनके आधार पर उसे दूसरों से अलग किया जा सकता है। इन विकास की मंजिलों की मुख्य विशेषताएँ और उस समय में व्याप्त श्रम कल्याण अभिगमों का विवरण निम्न हैं।

पराभव काल (subjugation) की शुरुआत रोम साम्राज्य की स्थापना से हुई। इस समय समाज का संगठन युद्ध जीतने के लिए किया जाता था। विजेता वर्ग हारे हुए वर्ग को अपने दास के रूप में स्वीकार करता था, वहीं दास उस काल के श्रमिक थे, जिनका क्रय एवं विक्रय किया जा सकता था। रोम साम्राज्य के पतन के पश्चात् समाज धार्मिक भावनाओं से विशेष रूप से प्रभावित होने लगा। इसके फलस्वरूप दस्तकारी एवं गिल्ड प्रणाली का यूरोपीय समाज में अभ्युदय हुआ। धार्मिक भावनाओं से वशीभूत होकर समाज के धनी लोग अपने दासों के कल्याण हेतु कुछ सुविधाएँ प्रदान करने लगे। इस प्रकार की धार्मिक भावनाओं से वशीभूत होकर किए गए कल्याण के पीछे यह भावना छिपी हुई थी कि यदि हम दूसरों का कल्याण करेंगे तो भगवान प्रसन्न होगा और इस प्रसन्नता के कारण वह न केवल इस जन्म में वरन् मरणोपरान्त अगले जन्म में भी कल्याण करता रहेगा। अतः यह श्रम कल्याण का धार्मिक अभिगम (religious approach) था। इस अभिगम में नियोक्ता दूसरों के कल्याण के लिए नहीं वरन् स्वयं अपने कल्याण हेतु भलाई का कार्य करता था। उपर्युक्त परिवेश में कुछ धर्मनिरपेक्ष ताकतों का भी अभ्युदय हुआ जो धर्म एवं वर्ग की विरोधी थीं। ऐसी धर्म विरोधी ताकतों में सामन्तवाद (feudalism) सबसे प्रबल था। सामन्तवाद के मूल्य थे वीरता और बर्बरता। समाज के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में रीति के देवता (Lord of manner) उनके प्रमुख देवता थे। ऐसे लोग गुलामों को अति दीन–हीन और निरीह बालक के समान समझते थे और मालिकों को उनके पिता तुल्य समझा जाता था, जिनका कार्य था बालक तुल्य दासों का भरण–पोषण।

उदारवादी काल (Livberalization) की शुरूआत फ्रांस की क्रान्ति हुई। इसके फलस्वरूप बडे–बडे औद्योगिक केन्द्रो की स्थापना हुई, जहाँ एक ओर पूँजी के मालिकों ने अपनी पूँजी के बल पर फैक्ट्रियाँ खड़ी की, वहीं ग्रामीण अंचलों से आए भाोषित श्रमिक मजदूर के रूप में कार्य करने लगे। सरकार औद्योगिक उत्पादन के सम्बन्ध में तटस्थतावादी नीति अपनाए हुई थी। यद्यपि अनुबन्धों की स्वतंत्रता थी, यहाँ कार्यरत मजदूरों का श्रम प्रबन्ध सम्बधों में नियोक्ता सदैव भाोषण करता था।

संगठित काल (organization) उस समय प्रारम्भ होती है जबकि इंग्लैण्ड में राजाओं का भाासन समाप्त कर जनतांत्रिक ढंग से चुनी सरकार पदारूढ़ हुई। इस अवस्था में समाज का संगठन जनतंत्र एवं कल्याणवाद के मूल्यों के आधार पर

होने लगा। इस परिप्रेक्ष्य में इंग्लैण्ड में जनतांत्रिक मूल्यों के आधार पर व्यवसाय संघों का अभ्युदय हुआ। कल्याणवाद के प्रभाव से श्रमकल्याण हेतु धार्मिक भावनाएँ कल्याणात्मक एवं जनतांत्रिक भावनाओं में बदलने लगीं और श्रमिकों (विशेषकर संगठित क्षेत्र में कार्यरत) के कल्याण हेतु तीन अभिगम अपनाए गए – 1.कामगारों की संतुष्टि, 2.सामाजिक सम्बन्ध एवं प्रतिष्ठा, 3.कार्य क्षमता में वृद्धि

श्रम कल्याण की मानव सम्बन्ध मूलक विचारधारा के काल– (औद्योगीकरण की उत्तरकालीन अवस्था) में कुछ सामाजिक विचारकों ने भी इस क्षैत्र में प्रवेश किया। इनमें एल्टन मयों सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण थे। उन्होंने वेस्टर्न इलेक्ट्रिक कम्पनी हाथोर्न (यू.एस.ए.) में मानवीय सम्बन्धों के बारें में कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोग किए। उन प्रयोगों के आधार पर उद्योग में मानवीय कारकों के सम्बन्ध में उन्होंने कुछ निश्कर्श निकाले। आगे चलकर राथलिस बर्जर एवं डिक ान आदि उनके प्रमुख अनुयायियों ने भी इस दिशा में कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोग किए और एल्टन मयो की विचारधारा के विकास में अपना योगदान दिया। सब कुछ मिलाकर एल्टन मेयो एवं उनके अनुयायियों के प्रयोग से जो निष्कर्ष निकले उन्हें एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया गया और उनकी विचारधारा को श्रम कल्याण विषयक मानव सम्बन्ध विचाराधारा (Human Relation School) का नाम दिया गया।

श्रम कल्याण शब्द इतना व्यापक है कि इसका विश्लेषण भिन्न–भिन्न तरीकों से किया जाता है। इस विविधता को उपयुक्त ठहराते हुए 'रॉयल लेबर कमीशन' ने लिखा है कि '' श्रम कल्याण एक ऐसा भाब्द है जिसे आवश्यक रूप से लचीला होना चाहिए। विभिन्न सामाजिक प्रथाओं, औद्योगीकरण की सीमा तथा श्रमिकों के सामजिक विकास के साथ ही साथ एक देश से दूसरे देश में इनकी विवेचना भिन्न होनी चाहिए। ''प्रथम राष्ट्रीय श्रम आयोग का यह मत है कि श्रम कल्याण की अवधारणा आवश्यक रूप से गत्यात्मक होनी चाहिए। एक देश से दूसरे देश में, एक समय से दूसरे समय में और यहाँ तक कि एक ही देश की मूल्य व्यवस्था, सामाजिक संस्थायें औद्योगीकरण की सीमा तथा सामाजिक एवं आर्थिक विकास के सामान्य स्तर के अनुसार इसे भिन्न–भिन्न रूपों में समझा जाता है। श्रम कल्याण की परिभाषा भी भिन्न–भिन्न तरीकों से दी गई है। कुछ परिभाषाओं में श्रम कल्याण के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। कुछ परिभाषाओं में श्रम कल्याण के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला गया है। कुछ अन्य परिभाषाओं में श्रम कल्याण के अन्तर्गत आने वाली सेवाओं का विवरण दिया गया ।

संभवतः भारत विश्व का अकेला ऐसा देश है, जहां कुछ निश्चित प्रकार के औद्योगिक प्रतिष्ठानों में समाज कार्यकर्ताओं को श्रम कल्याण अधिकारी के रूप में कार्य हेतु वैधानिक प्रावधान किए हुए है। पाश्चात्य विद्वान इसे आश्चर्यजनक दृष्टि से देखते हैं। डॉ. आप्टेकर के अनुसार यह एक आश्चर्यजनक बात है कि अमेरिका जैसे विकसित देश में भी श्रम कल्याण को समाज कार्य का क्षेत्र नहीं माना जाता है। किन्तु भारत में यह समाज कार्य का प्रमुख क्षेत्र है। अमेरिका के वृहद् औद्योगिक प्रतिष्ठानों में कार्मिक अधिकारी (अब मानव संसाधन प्रबन्ध अधिकारी) नियुक्त किए जाते है, पर उनका कार्य एवं प्रशिक्षण भारतीय कल्याण अधिकारी से पूर्णतया भिन्न है। उनकी कोई वैधानिक प्रस्थिति नहीं होती है और वे व्यापारोन्मुख होती है और वे समाज कार्य तथा मानवीय कल्याणोन्मुख होते हैं। डॉ. आप्टेकर की बातों का उत्तर देते हुए प्रो. धींगरा ने लिखा कि भारतीय औद्योगिक प्रतिष्ठानों में श्रम कल्याण अधिकारी की वैधानिक प्रस्थिति देश की सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों की देन है। समाज कार्य सम्बन्धी सेवाएँ सामान्यतया समाज के कमजोर वर्ग को दी जाती हैं। प्रारम्भिक अवस्था में भारतीय श्रमिक भी कमजोर प्राणी था और ग्रामीण वातावरण से आकर भाहरी वातावरण में समायोजन उसके लिए एक कठिन समस्या थी। ऐसी स्थिति में भारत जैसे सद्यः घोषित गणतंत्र और कल्याणकारी राज्य में श्रमिकों की स्थिति के सुधार के केवल दो ही रास्ते थे–

1 उद्योगपतियों और नियोक्ताओं को प्रोत्साहित कर उनके द्वारा कल्याणात्मक सेवाओं की व्यवस्था कराना।

2 अधिनियमों के माध्यम से श्रम कल्याण की न्यूनतम की सेवाओं की व्यवस्था कराना।

भारत में कार्मिक प्रबन्ध की भूमिका तो लगभग सभी कल्याण अधिकारी पसन्द करते हैं किन्तु सामाजिक कार्यकर्त्ता की भूमिका मुख्य रूप से वही कल्याण अधिकारी पसन्द करते हैं जो समाज कार्य में प्रशिक्षित हों। मॉडल रूल के अन्तर्गत कल्याण अधिकारी की जो ड्यूटी निर्धारित है, उसमें कुछ कार्य तो समाज कार्य सेवाओं के प्रशासन से सम्बंधित हैं और कुछ कार्य ऐसे है जो स्पष्टतया समाज कार्य सम्बन्धी कार्य हैं जैसे व्यक्तिगत एवं सामाजिक असमायोजन की स्थिति में श्रमिकों की सहायता, स्त्री एवं बाल श्रम का समायोजन, श्रमिकों का कार्य के साथ समायोजन, स्त्री एवं बाल श्रम का समायोजन, श्रमिकों का कार्य के साथ समायोजन, छुआछुत की प्रवृत्ति का त्याग तथा ऋणग्रस्तता से मुक्ति और परिवार कल्याण। समाज कार्य में प्रशिक्षित कल्याण अधिकारी इन कार्यों को विशेष अभिरुचि के साथ सम्पादित करना चाहते है, किन्तु नियोक्ता इन कार्यो की अपेक्षा अन्य अधिनियमित जिम्मेदारियों के क्रियान्वयन को अधिक महत्त्व देता है। फलस्वरूप कल्याण अधिकारी चाहते हुए भी समाज कार्य सम्बन्धी कार्यो को सक्षम ढंग से सम्पादित नहीं कर पाता है। इस प्रकार कल्याण अधिकारी के बहुत से कार्य समाज कार्य मूलक कार्य है। उसे कार्मिक प्रबन्ध सम्बन्धी जिन कार्यों का सम्पादन करना पड़ता है, उन्हें भी वह उस समय अधिक सक्षमता से सम्पादन कर सकता है जब वह समाज कार्य के अभिगमों का प्रयोग करते हुए उन कार्यो का सम्पादन करे। उदाहरणार्थ श्रमिकों का इनडक्शन, अनुपस्थिति नियंत्रण तथा बर्हिगमन साक्षात्कार आदि कार्य समाज कार्य में प्रशिक्षित कार्यकर्ता अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली ढंग से कर सकते हैं।

कल्याण अधिकारी के कार्य में सामूहिक सेवाकार्य के तत्वों का प्रयोग यदि हम औद्योगिक प्रतिश्ठान को सामूहिक सेवाकार्य का एक अभिकरण, कल्याण अधिकारों को प्रशिक्षित सामूहिक कार्यकर्ता, औद्योगिक उत्पादन को कार्यक्रम तथा श्रमिक एवं अन्य अभिकर्मियों को समूह के सदस्य के रूप में लें तो यह कह सकते है कि औद्योगिक प्रतिश्ठानों की समस्त कार्य प्रणाली सामूहिक कार्य की एक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत समस्त अभिकर्मी आपस में अन्तर्क्रिया करते हुए, पारस्परिक सहयोग से अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह करते हुए उत्पादन के सभी कार्यक्रम को सम्पन्न करते हैं और उसके माध्यम से उनकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ की उनमें पारस्परिक सहयोग,नेतृत्व अधिकार एवं कर्तव्यों का सम्यक ज्ञान और जिम्मेदारियों के निर्वाह सम्बन्धी योग्यताओं का विकास होता है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस विचारधारा की पुष्टि एल्टन मयो की विचारधारा के द्वारा होती है। उन्होंने औद्योगिक उत्पादन में लगे हुए समस्त अभिकर्मियो को एक समूह के रूप में देखते हुए उनमें पारस्परिक भावना के विकास पर सर्वाधिक बल दिया।

निष्कर्ष वास्तव में बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार औद्योगिक प्रतिष्ठानों में समाज कार्य को भी मानव संसाधन परामर्श की एक आवश्यक सेवा के रूप में अपने को प्रमाणित करना होगा। वैधानिक संस्था के रूप में कल्याण अधिकारी का जब औद्योगिक करना होगा। वैधानिक संस्था के रूप में कल्याण अधिकारी का जब औद्योगिक प्रतिष्ठानों में प्रादुर्भाव हुआ था, तब श्रमिक एक दीन–हीन असमायोजित एवं असहाय प्राणी था। पितृत्व भावना से उसकी थोड़ी बहुत सहायता एंव उसकी कुछ आव यकताओं की पूर्ति हेतु प्रदत्त सेवाएँ, यथा जलपानगृह, शिशुगृह, स्वास्थय रक्षण, भौचालय, स्नानगृह एवं मूत्रालय आदि की व्यवस्था पर्याप्त समझी जाती थी। किन्तु आज के वैश्वीकरण के युग में श्रम कल्याण की प्राथमिकताओं में विशेष परिवर्तन हुआ है। आज अधिकांश प्रतिष्ठानों में श्रम कल्याण की वैधानिक सेवाओं का कार्यान्वयन हो ही जाता है। बहुत सी विधानेत्तर सेवाओं का क्रियान्वयन भी औद्योगिक प्रतिष्ठान में किया जाता है।

शोधार्थी
(समाजशास्त्र) म.द.स. विश्वविद्यालय,
अजमेर (राजस्थान)